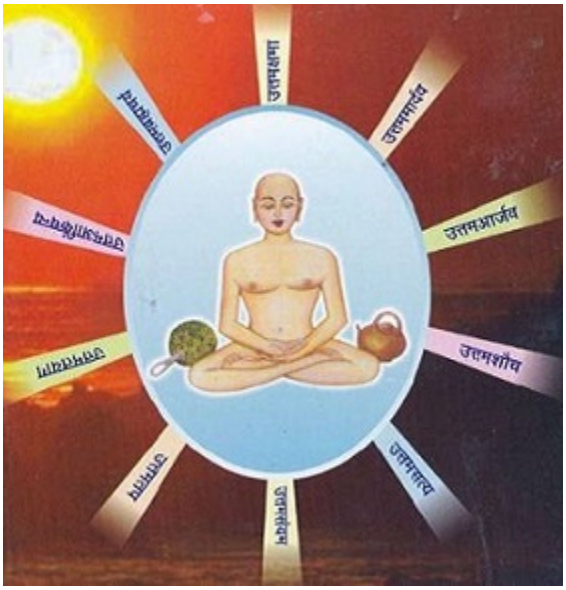

क्या 'दसलक्षण-पर्व के लिये 'पर्यूषण-पर्व कहना गलत है??

~ प्रो. सुदीप कुमार जैन, नई दिल्ली

आजकल यह प्रश्न युवा-पीढ़ी के द्वारा मुखरित हो रहा है कि दिगम्बर-जैन परम्परा के अनुसार दशलक्षण-पर्व को पर्यूषण-पर्व कहना उचित है क्या? यह प्रश्न अपने आपमें एक शुभ-लक्षण है कि जिस नयी-पीढ़ी को हम 'धर्म से विमुख' का विरुद देकर नवाज़ते थे, वही आज हमें धर्म के विषय में हमारी मूलभूत-पहिचानों के विषय में जागृत व सावधान कर रही है।

अभी हाल ही में हमारे समाजजनों के द्वारा 'दसलक्षण-पर्व' को 'पर्यूषण-पर्व' कहे जाने के विवाद पर जिज्ञासायें आयीं थीं, कि दिगम्बर-जैनसमाज के इस पर्व का वास्तविक-नामकरण क्या है? तथा क्या इसे 'पर्यूषण-पर्व' कहा जी सकता है, जो कि मूलतः श्वेताम्बर-जैनसमाज में प्रचलित नामकरण है?

यह प्रश्न बहुत सार्थक था। क्योंकि मुद्दा यह नहीं है कि इसका नाम श्वेताम्बर-जैनसमाज में प्रचलित है, इसीलिये हमें इसका विरोध करना चाहिये। बल्कि असली मुद्दा यह है कि क्या यह हमारे 'दसलक्षण-महापर्व का ही दूसरा नाम है? और इसका मूल-उद्देश्य और विधि वही है, जो हमारे द्वारा प्राचीनकाल से मनाये जा रहे दसलक्षण-महापर्व की है?

–यदि ये दोनों बातें समान हों, तो इसे 'दसलक्षण-महापर्व' कहें, या 'पर्यूषण-पर्व' कहें-- कोई अंतर नहीं पड़ता है। हम पंथवाद के व्यामोह में साधर्मी-वात्सल्य को नहीं छोड़ें-- इस बात से मैं सहमत हूँ। किंतु यदि मूलभूत-सिद्धान्त ही नितान्त-भिन्न हों, तो फिर साम्प्रदायिक-सौहार्द के नाम पर सिद्धान्तों से समझौता करना संभव नहीं है। अब वस्तुस्थिति पर विचार करें, तो पर्याप्त-अध्ययन के बाद भी मुझे श्वेताम्बर-जैनसमाज में प्रचलित 'पर्यूषण-पर्व' नामकरण का कोई सैद्धांतिक-आधार या मनाने की विधि-विशेष का विवरण नहीं मिल सका है। हो सकता है कि कदाचित् कोई प्रामाणिक-स्रोत मुझे दृष्टिगत नहीं हो सका हो, जबकि मैंने उनके प्रमुख सूचनास्रोतों को अच्छी तरह से देखने के बाद ही यह बात कही है। फिर भी जो बातें इन दोनों में नितान्त-भिन्नता प्रमाणित करतीं हैं, वे निम्नानुसार हैं: -

1.उनके 'पर्यूषण-पर्व' में 'दसलक्षण-धर्म' की आराधना का कोई उल्लेख तक नहीं है। जबकि 'दसलक्षण-महापर्व' तो इन्हीं दशलक्षण-धर्मों की आराधना पर आधारित ही है। इसके साथ-साथ दशलक्षण के आराधक तो सोलहकारण-भावनाओं का अनुचिंतन एवं आराधन भी बीस दिन पहले से प्रारंभ कर देते हैं। एवं इस पर्व की पूर्णता 'रत्नत्रय-धर्म' की आराधना से होती है। इसप्रकार दिगम्बर-जैन-आम्नाय में जितनी धर्म-सिद्धांतों पर केन्द्रित-आराधना की विधि दसलक्षण-महापर्व में देखी जाती है, वैसी श्वेताम्बर-जैनों में नहीं है।

2. 'पर्यूषण-पर्व' की अवधि आठ दिनों की है, जो कि भाद्रपद-मास के कृष्णपक्ष की द्वादशी-तिथि से प्रारंभ होकर भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थी को पूर्ण होते हैं। जबकि दसलक्षण-महापर्व की अवधि दस दिनों की है, जो कि भाद्रपद-मास के शुक्ल-पक्ष की पंचमी-तिथि से लेकर चतुर्दशी-तिथि (अनन्त-चतुर्दशी) तक होते हैं। इसकारण इनके आयोजन की तिथियों में भी पूर्णतः भिन्नता है। समानता नहीं है। साथ ही दसलक्षण-महापर्व के बीस दिनों पूर्व भाद्रपद-माह प्रारंभ होते ही मासोपवर्ती सोलहकारण-पर्व प्रारंभ हो जाती है, जो कि भाद्रपद-माह की पूर्णमासी-तिथि तक अनवरत चलता है।

साथ ही इस मास के अंतिम तीन दिनों में, अर्थात् भाद्रपद शुक्ल त्रयोदशी से भाद्रपद शुक्ल पूर्णमासी-तिथि तक 'रत्नत्रय' का पर्व भी सोत्साह-आराधनापूर्वक मनाया जाता है। इसप्रकार दिगम्बर-जैन-आम्नाय में 'दसलक्षण-महापर्व' एक धार्मिक और आध्यात्मिक-पर्वों की श्रृंखला का अंग बनकर आता है। यह विशेषता श्वेताम्बर-आम्नाय के 'पर्यूषण-पर्व' में नहीं देखी जाती है।

3. 'पर्यूषण-पर्व' का अंतिम-दिन ही 'संवत्सरी' का होता है, जिसमें 'सांवत्सरिक-प्रतिक्रमण' के अन्तर्गत ये लोग क्षमापना (खमत-खामणा) करते हैं। जबकि दसलक्षण-महापर्व के अगले दिन भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमा को 'रत्नत्रय-पर्व' एवं 'षोडशकारण-पर्व' की पूर्णता के बाद आश्विन-मास के कृष्णपक्ष की प्रतिपदा-तिथि को हमारे यहाँ 'क्षमावणी' का पर्व मनाया जाता है। यह पूरे महीने की अनवरत धार्मिक और आध्यात्मिक-साधना के परिणामस्वरूप निर्मल-हृदय से निर्गत निश्छल-उद्गारों के रूप में स्व-पर के अन्तःकरण को प्रक्षालित करनेवाली स्वाभाविक-परिणति के रूप में प्रतिफलित होता है। इन दिनों जहाँ मेघों से झरती अजस्त्र-धारायें प्रकृति और पर्यावरण को न केवल परिशुद्ध करतीं हैं, अपितु तन-मन की तपन को

भी उपशान्त करके अन्तःबाह्य-शांति का वातावरण निर्मित करतीं हैं। अतः ऐसी प्रतीत होता है कि हमारी धर्माराधना में मानो प्रकृति भी अपना योगदान समर्पित कर रही हो।

4.हमारे यहाँ 'दसलक्षण-पर्व' की आराधना वीतरागी-जिनेन्द्रदेव की विधि-विशेषपूर्वक आराधना के साथ पर्याप्त-संयम, और त्यागमयी जीवनशैली से की जाती है। इसमें जिनेन्द्रदेव की जो आराधना की जाती है; किन्तु वह "वंदे तद्गुण-लब्धये" का लोकोत्तर-स्वरूप होती है, न कि लोकैषणा और भोगैषणाओं से प्रवर्तित क्षुद्र-स्वार्थों से प्रेरित कर्मकांड। साथ ही बिना पंचांगी-स्वाध्याय (वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश) के बिना तो दसलक्षण-महापर्व की आराधना की कल्पना तक दिगम्बर-जैन-आम्नाय में संभव नहीं है। इसके साथ ही यथाशक्ति-संयम और धर्म-अनुशासित जीवन भी इसका महत्त्वपूर्ण पक्ष होता है।

जबकि श्वेताम्बर-आम्नाय में स्थानकवासियों में तो अधिक से अधिक 'णमोकारमंत्र' का अखंडपाठ (जितनी संभव हो सका, कुछ घंटे, एक-दो दिन या बहुत हुआ तो आठों दिन) की चौकी स्थापित कर ली जाती है। माला फेर ली जाती है। तथा यदि किन्हीं साधु-श्रमणी का सान्निध्य हुआ, तो उनके उपदेश का आयोजन कुछ समय के लिये कर लिया जाता है। और मूर्तिपूजक-श्वेताम्बर-जैनों के यहाँ यदि कहीं विशेषरूप से आयोजन करना हुआ, तो 'स्नात्रपूजा' जैसे किसी विशेष अनुष्ठान का आयोजन कर लिया जाता है , जो कि आजकल बाह्य-आडम्बर और लोकैषणा से व्याप्त ही होती है।

(इन सभी सम्प्रदायों में इन पर्वों के नाम पर जो हास्य-कवि-सम्मेलन, पिकनिक-पार्टी, नाटक आदि मनोरंजक-कार्यक्रमों का और दावतों-गोठों आदि का आयोजन किया जाता है; उन सबका मैं यहाँ उल्लेख

तक नहीं करना चाहता हूँ। क्योंकि इन सबका धर्म से दूर दूर तक कोई रिश्ता-नाता नहीं है।) यदि बच्चों में धार्मिक रुचि और जागरुकता की वृद्धि के लिये कुछ सांस्कृतिक-कार्यक्रम मर्यादित-रीति से आयोजित किये जाते हैं, तो उन्हें तो आज की परिस्थितियों के अनुसार नयी पीढ़ी को धर्मशिक्षण और संस्कारित करने की दृष्टि से किया जाना सामयिक प्रतीत होता है।)

(किंतु मात्र आयोजनप्रियता और लड्डू-कचौड़ीवाले कार्यक्रम या गिफ्टें बँटवाने की बातों की प्रधानता जहाँ दिखे, वहाँ मैं किसी भी आयोजन से सहमत नहीं हूँ।)

5. परम्परा की दृष्टि से देखें, तो दोनों आम्नायों में एकसमान कथा मिलती है कि 'युग-परिवर्तन के समय जब प्रलय जैसी स्थिति होती है और वनस्पतियाँ तक नष्ट हो जातीं हैं, तो उसके बाद श्रावण-कृष्ण-प्रतिपदा से लगातार सात-सप्ताह तक विभिन्न-जाति के मेघों से विविधप्रकार की वर्षा होती है। यह सात-सप्ताह 'भाद्रपद-माह के शुक्लपक्ष की पंचमी-तिथि' को पूर्ण होते हैं। दिगम्बर-जैन-आम्नाय के अनुसार इसी तिथि से पुनः सृष्टि वनस्पति आदि से सम्पन्न होती है। अनुकूल-संसाधनोंवाला समय आने पर श्रावकजन मिलकर सोत्साह-धर्म-आराधना करते हैं और दसलक्षण-धर्म की दस दिनों तक अनवरतरूप से समर्पित होकर आराधना करते हैं। वे दस दिन 'दसलक्षण-महापर्व' के रूप में कहे गये हैं। और यह दस दिन भाद्रपद शुक्ल पंचमी-तिथि ' से भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी तक पूर्ण होते हैं। परिणामों की उपशान्तता और निरन्तर-धर्माराधना के कारण जीव मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होने के लिये' भाद्रपद शुक्ल त्रयोदशी' से 'भाद्रपद शुक्ल पूर्णमासी-तिथि' तक तीन दिन 'रत्नत्रय' की विशेष आराधना करते हैं। इसप्रकार दसलक्षण-धर्म और रत्नत्रय की आराधना पूर्ण होने पर उनका निर्मल-हृदय अपने दोषों को दर्पणवत् पहिचानने में समर्थ होता है, साथ ही दूसरों के दोषों के प्रति अपने कषायभाव को भी छोड़कर वे उन्हें क्षमा करते हुये अपने अपराधों के लिये उनसे क्षमायाचना करते हैं।

जबकि श्वेताम्बर-आम्नाय में यह माना गया है कि भाद्रपद-माह के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी-तिथि से (आजकल यदि तिथि-क्षय की स्थिति बने, तो द्वादशी-तिथि से) लगातार सात-दिनों तक 'रस' नामक मेघों से वर्षा होती है। जिनके प्रभाव से हरतरह की वनस्पतियाँ एवं फल-फूल उग आते हैं। तो पहले विपरीत-परिस्थितियों में वनस्पति एवं फल-फूल नष्ट हो जाने से जो जीव मांसाहारी बन गये थे, वे पुनः शाकाहार की ओर लौटने लगते हैं। अतः इसी एक सप्ताह तक वे इनके सहारे अपनी आहारचर्या को पुनः संस्कारित करते हुये धर्माराधना करते हैं। और 'भाद्रपद शुक्ल पंचमी-तिथि' को वे 'ऋषि-पंचमी' के रूप में मनाते हुये इसे 'संवत्सरी-पर्व' के रूप में मनाते हैं। और परस्पर क्षमायाचना करते हुये आपसी सौहार्द एवं साधर्मी-वात्सल्य की वृद्धि करते हैं।

इन दोनों में तुलनात्मक-विवेचन की विशेष-अपेक्षा ही नहीं है। क्योंकि जब तक मेघों से सघन-वर्षा चल रही हो, तो लोग सामूहिकरूप से धर्माराधना में कैसे प्रवृत्त हो सकते हैं? और धर्माराधना किये बिना परिणामों में वह निर्मलता कैसे आ सकती है, जिसके फलस्वरूप वे पारस्परिक क्षमाभाव का आदान-प्रदान करते हुये 'संवत्सरी-पर्व' मना सकें???

यह तो वर्षा रुकने पर निरन्तर धर्माराधना करने के व मोक्षमार्ग की साधना करने के फलस्वरूप ही संभव है। अतः दिगम्बर-जैन-आम्नाय के 'दसलक्षण-महापर्व' की अवधारणा अधिक व्यापक-दृष्टिकोणवाली एवं व्यावहारिक प्रतीत होती है। इसीलिये दिगम्बर-जैन-आम्नाय के इस पर्व को 'दसलक्षण-महापर्व' की संज्ञा ही अधिक व्यापक-दृष्टिकोण वाली सिद्ध होती है।

श्वेताम्बर-आम्नाय में प्रचलित 'पर्यूषण-पर्व' की अवधारणा में इस पद का अर्थ वे "परि=समन्तात् यानि सब ओर से, ऊषण= निकट रहना यानि सांसारिक-प्रवृत्तियाँ छोड़कर आत्मस्वरूप के निकट रहना या निकट रहने की कोशिश करना" है। इसके लिये वे उपवास, रात्रिभोजन-त्याग, अभक्ष्य-भक्षण-त्याग आदि रूप बाह्य-धर्मसाधनों को यथाशक्ति अपनाते हैं। और अंतिम-दिन 'संवत्सरी-पर्व' मनाकर इसका पूर्णता करते हैं। -यह विवरण श्वेताम्बर-आम्नाय के आगम-ग्रंथ 'कल्पसूत्र' में आगत 'पज्जुवासणा-कल्प' नामक दसवें कल्प पर आधारित है। और इसी 'पज्जुवासणा' या 'पज्जूसणा' नाम के आधार पर वे 'पर्यूषण-पर्व ' नाम की अवधारणा को प्रस्तुत करते हैं।

परन्तु इस सब जानकारी से यह स्पष्ट है कि श्वेताम्बर-आम्नाय में व्यावहारिकरूप में आज इन बातों का अनुपालन नहीं देखा जा रहा है और एक रूढिवत् इस पर्व का आयोजन हो रहा है। वैसे तो दिगम्बर-जैन-आम्नाय में भी संस्कारों की जहाँ क्षीणता हो रही है, वहाँ कमोवेश यही स्थिति बन रही है। किन्तु सैद्धांतिक-दृष्टि से दिगम्बर-जैन-आम्नाय का 'दसलक्षण-महापर्व' अपेक्षाकृत बेहतर-स्थिति में है और इसका आम्नाय भी वैज्ञानिक तो है ही, व्यावहारिक भी है। क्योंकि जहाँ श्वेताम्बर-आम्नाय में इन दिनों किसी भी धर्म-विशेष की आराधना करने का विधान नहीं किया गया है, वहीं दिगम्बर-जैन-आम्नाय में न केवल क्षमा-मार्दव आदि दसलक्षण-धर्म की आराधना का विधान मिलता है, साथ ही मोक्षमार्ग के जीवन्तरूप रत्नत्रय की आराधना करने का भी प्रावधान है। साथ ही 'शासन-नायकत्व' (तीर्थंकरत्व) की पात्रता की नियामक षोडशकारण-भावनाओं की आराधना भी वे पहले से कर रहे होते हैं और अंत तक अनवरतरूप से करते रहते हैं। अतः सुदीर्घ-धर्मसाधन से परिणामों में वैसी विशुद्धि जागृत होने की अधिक संभावना है, जिसके परिणामस्वरूप 'क्षमावणी-पर्व' जैसी प्रक्रिया जनजीवन में जीवन्तरूप ले सके।

यह तो 'पर्यूषण-पर्व' की एवं 'दसलक्षण-महापर्व' की तुलनात्मक-विवेचन-संबंधी संक्षिप्त-चर्चा हुई। 'समता' और 'सामयिक' की प्रधानतावाले श्रावकधर्म में पूजा, संयम और बड़ों की विनय आदि अनिवार्य-अंग माने गये हैं। इनकी उपेक्षा करके मात्र साम्प्रदायिक-सौहार्द के नाम पर यदि हमें 'दसलक्षण-महापर्व' को 'पर्यूषण-पर्व' कहने का तर्क पढ़ाया जा रहा हो, तो क्या साम्प्रदायिक-सौहार्द का दायित्व मात्र दिगम्बर-जैन-आम्नाय के लोगों के ही हिस्से में आया है? श्वेताम्बर-आम्नाय के अनुयायी क्यों नहीं 'दसलक्षण-महापर्व' के नाम से अपने आठ-दिनी पर्व को मनाने की बात करते हैं। और मुद्दा मेरा-तेरा करने का है ही नहीं। मुद्दा तो 'सिद्धांत' और 'व्यवहार' का है।

जब सैद्धांतिक और व्यावहारिक – दोनों दृष्टियों से 'दसलक्षण-महापर्व' की मौलिक-पहिचान एवं अप्रतिम-महत्त्व है; तो फिर साम्प्रदायिक-सौहार्द के नाम पर यह आग्रह क्यों है कि "दिगम्बर-जैन-आम्नाय के अनुयायी अपने शाश्वत 'दसलक्षण-महापर्व' को 'पर्यूषण-पर्व' के नाम से कहें और साम्प्रदायिक-सौहार्द की मिसाल पेश करें।" और क्यों हम इस बात का अंधानुकरण कर रहे हैं? ऐसे तो कल यह भी कहा जायेगा कि "साम्प्रदायिक-सौहार्द के लिये दिगम्बर-जैन-आम्नाय के अनुयायी रागी व परिग्रही-मूर्तियों को पूजें!!"

जिनके बारे में प्रसिद्ध श्वेताम्बर-आम्नाय के विद्वान् पं. दलसुखभाई मालवणिया आदि ने कहा था कि — "मूर्तिपूजक-श्वेताम्बर-जैन-परम्परा की मूर्तियों में 'रोलेक्स' की घड़ी और 'रेमण्ड' के सूट की भर कमी रह गयी है। बाकी परिग्रह तो हमने उन्हें पहिना ही दिया है।"

अपरिग्रह का अप्रतिम-महत्त्व माननेवाले जैनधर्म में परिग्रह, आडम्बर और लोकैषणा के कारण प्रवर्तित-विचारधारायें तो वास्तव में 'जैन' संज्ञा की ही पात्र नहीं हैं। क्योंकि वे जैनत्व की आधारभित्ति को नष्ट करनेवाली विपरीत-विचारधारा की पोषक हैं। **अतः 'दसलक्षण-महापर्व' को 'पर्यूषण-पर्व' कहे जाने के आग्रह का कोई औचित्य व सार्थकता नहीं है। बल्कि यह 'दसलक्षण-महापर्व' की मूलभावना पर आघात करना है।**